ऋषिभाषित और पालि जातक में प्रत्येक-बुद्ध की अवधारणा

डॉ० दशरथ गोंड

जैनाचार्यों ने, विशेषकर श्वेताम्बराचार्यों ने बौद्धों की ही भाँति प्रत्येक बुद्धों की कल्पना की है और दोनों परम्पराओं में प्रत्येक-बुद्ध उन आत्मनिष्ठ साधकों की संज्ञा है जो गृहस्थ होते हुए किसी एक निमित्त से बोधि प्राप्त कर लें, अपने आप प्रव्रजित हों और बिना उपदेश किये शरीरान्त कर मोक्ष लाभ करें।[1] यद्यपि दोनों ही परम्पराओं में प्रत्येक-बुद्धों के यत्र-तत्र अनेक सन्दर्भ हैं, पर जैन परम्परा में उनका विशेष उल्लेख ऋषिभाषित एवं उत्तराध्ययन में प्राप्त होता है। बौद्ध साहित्य में तो प्रत्येक-बुद्धों के अनेक सन्दर्भ हैं, परन्तु प्राचीन पालि साहित्य में उनके विषय में सूचना का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत जातक साहित्य है। यह तथ्य अपने आप में रोचक और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जहाँ ऋषिभाषित में प्राचीन ऋषियों के रूप में प्रत्येक-बुद्धों का उल्लेख है और परम्परानुसार उन्हें अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ तथा महावीर के शासनकाल का कहा गया है,[2] वहीं पर जातकों में भी प्रत्येक-बुद्धों का **सन्दर्भ** गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन की कथाओं से जोड़ा गया है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य बौद्ध और जैन परम्परा के इन दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में प्रत्येक-बुद्ध की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन है।

ऋषिभाषित (इसिभासियाइं)

जैन साहित्य में ऋषिभाषित का **सन्दर्भ** तो बहुत पहले से ज्ञात था, परन्तु पहली बार यह ग्रन्थ १९२७ में प्रकाश में आया। सम्प्रति "इसिभासियाइं" शीर्षक से इसका प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० वाल्थेर शुब्रिंग द्वारा सम्पादित संस्करण उपलब्ध है[3] और हाल ही में डॉ० सागरमल जैन महोदय ने इसका एक सारगर्भित अध्ययन भी प्रकाशित किया है।[4] यह रोचक है कि जहाँ श्वेताम्बर जैन आगम ग्रन्थों में ऋषिभाषित के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वहीं प्रकीर्णक ग्रन्थों में

---

१. देखिए मलालशेखर : डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृष्ठ ९४, सन्दर्भ "पच्चेकबुद्ध"; पुग्गल पञ्ञत्ति (पी०टी०एस० संस्करण) पृष्ठ १४; वर्णी, जिनेन्द्र : जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, सन्दर्भ "बुद्ध"; जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, खण्ड ६, पृष्ठ १६० ।

२. पत्तेयबुद्धमिसिणो बीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स ।
पासस्स य पण्ण दस वीरस्स विलीणमोहस्स ॥
---इसिभासियाइं; जैन, सागरमल : ऋषिभाषित एक अध्ययन, पृष्ठ ११ भी द्रष्टव्य ।

३. शूब्रिंग, वाल्थेर (सम्पादक) : इसिभासियाइं (एल०डी० सिरीज ४५), एल०डी० इंस्टिटिट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, अहमदाबाद, १९७४. यह ग्रन्थ लेखक के मूल जर्मन का भारतीय संस्करण है ।

४. जैन, सागरमल : ऋषिभाषित एक अध्ययन (प्राकृत भारती पुष्प ४९) प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर १९८८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी गणना का उल्लेख भी मिलता है, और आवश्यक-निर्युक्तिकार का इस प्रकार का कथन भी है कि उनकी ऋषिभाषित पर भी निर्युक्ति रचने की योजना थी। वस्तुतः ऋषिभाषित उपलब्ध जैन आगम का अंग नहीं है और श्वेताम्बर-दिगम्बर किसी भी परम्परा में इसे स्थायी स्थान नहीं प्राप्त हुआ।[1] डॉ० सागरमल जैन जी का यह अनुमान[2] सत्य प्रतीत होता है कि अपनी विकासशील प्रारम्भिक अवस्था में जैन परम्परा को विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक उपदेशों का ही संकलन होने के कारण ऋषिभाषित को अपने आगम में स्थान देने में कोई बाधा नहीं प्रतीत हुई होगी; परन्तु जब जैन संघ ने एक सुव्यवस्थित एवं रूढ़ परम्परा का रूप ग्रहण कर लिया, तब उसके लिये अन्य परम्पराओं के साधकों को आत्मसात् कर पाना कठिन हो गया। फलतः एक प्रकीर्णक ग्रन्थ के रूप में उसकी गणना की जाने लगी और उसकी प्रामाणिकता सुरक्षित रखने के लिये उसे प्रत्येक-बुद्ध भाषित माना गया।

ऋषिभाषित में ऋषि, परिव्राजक, ब्राह्मण परिव्राजक अर्हत्, ऋषि, बुद्ध, अर्हत् ऋषि, अर्हत् ऋषि आदि विशेषणों से युक्त विभिन्न साधकों के वचनों का उल्लेख हुआ है। इन विशेषणों में प्रत्येक-बुद्ध का अभाव है। पर यह उल्लेखनीय है कि ऋषिभाषित के अन्त में प्राप्त होने वाली संग्रहणी गाथा[3] में एवं ऋषिमण्डल[4] में सभी को प्रत्येक-बुद्ध कहा गया है और यह भी चर्चा है कि इनमें से २० अरिष्टनेमि के, १५ पार्श्वनाथ के और शेष महावीर के शासन काल में हुए।[5] समवायांग में ऋषिभाषित के महत्त्वपूर्ण उल्लेख में इन ऋषियों को "देवलोक से

---

१. ऋषिभाषित की स्थिति के लिये विस्तार से देखें : शूब्रिग द्वारा सम्पादित "इसिभासियाइं" का भूमिका भाग और जैन, सागरमल : ऋषिभाषित—एक अध्ययन, पृष्ठ १–४।

२. जैन, सागरमल : उपरोक्त, पृष्ठ १०–११।

३. पत्तेय बुद्धमिसिणो वीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स।
पासस्स य पण्णरस्स वीरस्स विलीणमोहस्स ॥ १ ॥
णारद-वज्जिय-पुत्ते असिते अंगरिसि-पुप्फसाले य।
वक्कलकुम्मा केवलि कासव तह तेतलिसुत्ते य ॥ २ ॥
मंखली जण्णभयालि बाहुय महु सोरियाण विदूविपू।
वरिसकण्हे आरिय उक्कलवादी य तरुणे य ॥ ३ ॥
गद्दभ रामे य तहा हरिगिरि अम्बड मयंग वारत्ता।
तंसो य अद्द य वद्धमाणे वा तीस तीमे ॥ ४ ॥
पासे पिंगे अरुणे इसिगिरि अदालए य वित्तेय।
सिरिगिरि सातियपुत्ते संजय दीवायणे चेव ॥ ५ ॥
तत्तो य इंदणागे सोम यमे चेव होइ वरुणे य।
वे समणे य महप्पा चत्ता पंचेव अक्खाए ॥ ६ ॥
—इसिभासियाइं संग्रहिणी गाथा परिशिष्ट।

४. आचारांग-चूर्णि में ऋषिमण्डल स्तव (इसिमण्डलत्थउ) नामक ग्रन्थ का उल्लेख है। इसमें ऋषिभाषित के अनेक ऋषियों एवं उनके उपदेशों का संकेत है, जो इस बात का परिचायक है कि ऋषिमण्डल का कर्त्ता ऋषिभाषित से अवश्य अवगत था।

५. देखिए जैन, सागरमल : वही, पृ० ११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्युत" कहा गया है। वहाँ प्रत्येक-बुद्ध का कोई सन्दर्भ तो नहीं है, परन्तु उसी ग्रन्थ में प्रश्न-व्याकरण की विषय-वस्तु का विवरण देते हुए यह कहा गया है—"इसमें स्वसमय और पर-समय के प्रवक्ता प्रत्येक-बुद्धों के विचारों का संकलन है।"[1] चूँकि ऋषिभाषित प्रश्नव्याकरण-दशा का ही एक भाग माना गया था, इसलिये उपर्युक्त कथन ऋषिभाषित के ऋषियों के परोक्षरूप से "प्रत्येक-बुद्ध" होने का संकेत करता है। प्रत्येक-बुद्ध की संज्ञा का स्पष्ट उल्लेख तो हमें ऋषिभाषित के अन्त में प्राप्त होने वाली उस संग्रहणी गाथा में ही मिलता है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

ऋषिभाषित में कुल ४५ ऋषियों के वचनों का संकलन है : देवनारद, वज्जीपुत्त, असित देवल, अंगिरस भारद्वाज, पुष्पशालपुत्त, वल्कलचीरी, कुम्मापुत्त, केतलीपुत्त, महाकाश्यप, तेतलीपुत्र, मंखलिपुत्त, जण्णवक्क (याज्ञवल्क्य), मेतेज्ज भयाली, बाहुक, मधुरायण, शौर्यायण, विदुर, वारिषेण कृष्ण, आरियायण, उत्कट, गाथापतिपुत्र तरुण, गर्दभाल (दगभाल), रामपुत्त, हरिगिरि, अम्बड परिव्राजक, मातङ्ग, वारत्तक, आर्द्रक, वर्द्धमान, वायु, पार्श्व, पिंग, महाशालपुत्र अरुण, ऋषिगिरि, उद्दालक, नारायण (तारायण), श्रीगिरि, सारिपुत्र, संजय, द्वैपायण (दीवायण), इन्द्रनाग (इंदनाग), सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। देवनारद के उपदेश की विशेषता पवित्रता को मुक्ति का आधार मानना और जाने माने अहिंसादि पाँच व्रतों के रूप में ही शुद्धता की परिभाषा करना है। वज्जीपुत्त मोह को कर्म का मूल स्रोत मानते थे और बीज तथा अंकुर की भाँति जन्म-मरण चक्र की कल्पना करते थे। असित देवल के उपदेश में निवृत्ति और अनासक्ति पर बल है। अंगिरस भारद्वाज अपनी मनोवृत्तियों के निरीक्षण द्वारा पाप कर्म से बचने का उपदेश देते थे। पुष्पशाल-पुत्र के उपदेश में भी आचरण की शुद्धता पर ही बल है और अहिंसादि नियमों का विधान है। उनकी मुक्ति की अवधारणा आत्मसाक्षात्कार के रूप में है। वल्कलचीरी के उपदेश का मूलाधार है काम भावना का संयमन और ब्रह्मचर्य का पालन। कुम्मापुत्त निराकांक्षी होने का उपदेश देते थे। केतलीपुत्र रेशम के कीड़े की भाँति अपना बन्धन तोड़ कर मुक्त होने की बात करते थे। महाकाश्यप का उपदेश संततिवाद कहा गया है और इन्होंने निर्वाण की उपमा दीपक के शान्त होने से दी है। तेतलीपुत्र जीवन की निराशाओं को ही वैराग्य का प्रेरक तत्त्व मानते थे। मंखलिपुत्त का सुपरिचित उपदेश विश्व की घटनाओं को अपने नियतक्रम से घटित होने और यह समझ कर उनसे क्षुब्ध न होने का है। जण्णवक्क लोकैषणा और वित्तैषणा के परित्याग का उपदेश देते थे। मेतेज्ज भयाली भी आत्म विमुक्ति की चर्चा करते थे और इनका दर्शन एक प्रकार का अकारकवाद प्रतीत होता है क्योंकि वे सत् और असत् का कोई कारण नहीं स्वीकार करते थे। बाहुक भी चिन्तन की शुद्धि और निष्कामता का उपदेश देते थे। मधुरायण आत्मा को अपने ही कर्मों का कर्ता भोक्ता स्वीकार करते हुए पाप मार्ग के त्याग द्वारा मुक्ति का उपदेश देते थे। शौर्यायण इन्द्रियजन्य सुख को ही राग-द्वेष का कारण स्वीकार करते हुए इन्द्रियों के संयमन का उपदेश देते थे। विदुर के उपदेश में स्वाध्याय, ध्यान और अहिंसक प्रवृत्ति पर बल है। वारिषेण कृष्ण सिद्धि की प्राप्ति के लिये अनाचरणीय कर्मों से विरत रहने और अहिंसादि के पालन का उपदेश देते थे। अरियायण

---

१. पण्हावागरणदसासु णं ससमय-परसमय पण्णवय पत्तेयबुद्ध -विविहत्थभासाभासियाणं- समवायांग सूत्र ५४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यत्व की प्राप्ति के रूप में मुक्ति की कल्पना करते थे। उत्कट शीर्षक से भौतिकवादी ऋषियों की चर्चा है, जो आत्मा, पुनर्जन्म, पाप, पुण्य, आदि का भेद स्वीकार नहीं करते थे और विविध रूपों में सुखवाद का उपदेश देते थे। गाथापतिपुत्र तरुण अज्ञानता को ही परम दुःख कहते थे और मुक्ति के लिये ज्ञानमार्ग का उपदेश देते थे। यह रोचक है कि इनकी ज्ञान की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत तथा उदार थी और इसमें औषधियों का विन्यास, संयोजन और मिश्रण तथा विविध साधनाओं की साधना भी समाविष्ट थी। गर्दभाल (दगभाल) के उपदेश में हिंसा रहित होने की चर्चा है। ये भी ज्ञान और ध्यान के ही उपदेशक थे। रामपुत्त संसार-विमुक्ति के लिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पालन का उपदेश देते थे और कर्मरज से मुक्ति के लिये तप का विधान करते थे। हरिगिरि के सिद्धान्त में नियतिवाद और पुरुषार्थवाद के समन्वयक के रूप में कर्म-सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया है। अम्बड परिव्राजक अपनी आचार परम्परा के कारण ही चर्चित हुये। मातङ्ग जन्म के आधार पर वर्ग भेद स्वीकार नहीं करते थे और आध्यात्मिक कृषि पर बल देते थे। वारत्तक अकिंचनता को श्रमणत्व का आदर्श मानते थे। आर्द्रक भी काम-भोगों को सभी दुःखों के मूल में देखते थे। वर्द्धमान का भी अर्हत् ऋषि के रूप में उल्लेख है। वे इन्द्रिय और मन के संयम पर बल देते हैं और कर्म रज के आस्रव, निरोध आदि की प्रक्रिया समझाते हैं। वायु के उपदेश में भी कर्म-सिद्धान्त का निरूपण है और बीज के अंकुरित होने से उसकी उपमा दी गयी है। पार्श्व नामक अर्हत् ऋषि लोक को शाश्वत मानते हुये भी इसे पारिणामिक या परिवर्तनशील कहते थे और पुण्य-पाप को जीवन का स्वकृत्य स्वीकार करते हुये मुक्ति के लिये चातुर्याम का उपदेश देते थे। पिंग भी आध्यात्मिक कृषि के ही उपदेशक थे और आत्मा को क्षेत्र, तप को बीज, संयम को नंगल और अहिंसा तथा समिति को बैल मानते थे। महाशालपुत्र अरुण के उपदेश में संसर्ग का सर्वाधिक प्रभाव स्वीकार करते हुये कल्याण मित्रता पर बल दिया गया है। ऋषिगिरि के वचन में सहनशीलता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। उद्दालक क्रोधादि कषायों को सांसारिक बन्धन का कारण बताते थे और क्रोध, अहंकार, माया, लोभ इत्यादि से विरति का उपदेश देते थे। नारायण (तारायण) के उपदेश में भी क्रोध को ही प्रधान दोष स्वीकार किया गया है। श्रीगिरि एक प्रकार से शाश्वतवादी थे उनके आचार में वैदिक कर्मकाण्ड का समर्थन झलकता है। सारिपुत्र नामक अर्हत् बुद्ध ऋषि को अतिवर्णना और मध्यम मार्ग की साधना से जोड़ा गया है। संजय हर प्रकार के पाप कर्म से विरत रहने का उपदेश देते हैं। द्वैपायन (दीवायण) इच्छाओं के दमन की बात करते हैं और उसी को सुख का मूल मानते हैं। इन्द्रनाग (इंदनाग) भी विषय-वासना से मुक्ति की चर्चा करते हैं और मुनि को विभिन्न प्रकार की विद्याओं के आश्रय, भविष्यकथन आदि द्वारा आजीविका प्राप्ति से बचने की सलाह देते हैं। सोम के उपदेश में निरन्तर आध्यात्मिक विकास के लिये प्रयत्नशील रहने का उद्बोधन है। यम लाभ-हानि से अप्रभावित रहने को ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं। वरुण भी राग-द्वेष से अप्रभावित होने का उपदेश देते हैं और वैश्रमण के वचन में अहिंसा के पालन पर बल है।[1]

---

१. ४५ प्रत्येक-बुद्धों के विस्तार के लिये देखिये, सं० वाल्थेर शूब्रिग : इसिभासियाइं; एवं जैन, सागरमल : ऋषिभाषित एक अध्ययन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि कुछ इने-गिने अपवादों को छोड़कर सभी ऋषियों के उपदेश मुक्ति-मार्ग के ही उपदेश हैं। सीमित उपलब्ध सामग्री से उनमें प्रत्येक का दार्शनिक दृष्टिकोण तो पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता, और यह भी संभव है कि जिस युग का यह सन्दर्भ है उसकी दृष्टि से विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों में वस्तुतः परिपक्वता का अभाव रहा हो और किंचित् अस्पष्टता रही हो। परन्तु यह निर्विवाद है कि प्रायः प्रत्येक के उपदेश में आचार-विचार की शुद्धता पर बल है और इन्द्रिय संयम, अनासक्ति, अहिंसादि व्रतों के पालन का उपदेश है। संक्षेप में इसमें कोई संदेह नहीं प्रतीत होता कि सामान्य रूप से ऋषिभाषित के ये ऋषि प्रायः श्रमण परिव्राजक परम्परा की ही विशेषता लिये हुए हैं। परन्तु हमारी दृष्टि से एक अत्यन्त रोचक तथ्य यह है कि उपर्युक्त सूची में कुछ अपरिचित नामों के साथ अनेक सुपरिचित नाम हैं, जो न केवल अन्यत्र जैन साहित्य में प्राप्त होते हैं, अपितु बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य में भी मिलते हैं। कुछ तो ऐसे नाम हैं जो ऐतिहासिक स्वीकार किये जाते हैं और जिनसे जुड़े उपदेश अन्य स्रोतों से भी भली-भाँति समर्थित हैं। यह भी रोचक है कि इस सूची में पार्श्व, वर्द्धमान, मंखलिपुत्र, महाकाश्यप, सारिपुत्र, आदि सुपरिचित नाम भी हैं और इनके साथ जुड़े उपदेशों की ज्ञात सूचनाओं से कहीं कोई विसंगति नहीं है।[1]

जातक

जातक कथाओं में बुद्ध के पूर्व-जन्म की कथाएं संग्रहीत हैं जब बुद्ध ने बुद्धत्व की अभीप्सा में अपनी बोधिसत्त्व अवस्था में पारमिताओं का अभ्यास किया था। थेरवादी परम्परा में इन कथाओं को सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय में स्थान दिया गया है।[2] इसके संकेत हैं कि मूल जातक गाथा रूप में थे और आकार में संक्षिप्त और अनुमानतः प्रत्येक जातक के लिये मौखिक कथा कही जाती थी। बुद्ध के पूर्व जन्मों की ये कथायें इतनी प्रचलित हो गयी थीं कि उनके संकेत रूप गाथा का ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होता था और उतने से ही कथा समझ ली जाती थी। ये कथायें विस्मृत न हो जायँ इसलिये कालान्तर में प्राचीन गाथाअ और उनसे संयुक्त मौखिक कथाओं ने सम्मिलित रूप से जातकट्ठकथा का रूप लिया। इसी समय जिस जातक से हम प्रायः परिचित हैं वह यही प्राचीन जातकट्ठकथा या जातकट्ठवण्णना

१. ऋषिभाषित की सूची के अन्य अनेक ऋषियों और उनके मतों को पहचानने की चेष्टा की जा सकती है। सागरमल जैन जी के अध्ययन में इस प्रकार का प्रयास है। उन्होंने रामपुत्त ऋषि को गौतम बुद्ध के गुरु रुद्रक रामपुत्त के रूप में पहचानने की चेष्टा की है। यह रोचक है कि ऋषिभाषित में महाकाश्यप और सारिपुत्र को तो स्थान मिला है किन्तु उनके शास्ता को गौतम बुद्ध नहीं।

२. जातक साहित्य से सामान्य परिचय के लिये देखिए विण्टरनिट्ज़, एम०, **ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर**, खण्ड २, पृष्ठ ७१३ और आगे; उपाध्याय, भरत सिंह, **पालि साहित्य का इतिहास**, पृ० २९७ और आगे; जातक, अंग्रेजी अनुवाद, सं०, ई०बी०कावेल, खण्ड १, प्राक्कथन; हिन्दी अनुवाद—भदन्त आनन्द कौसल्यायन, खण्ड १, वस्तुकथा; आदि। प्रस्तुत लेख में पाद-टिप्पणियों में जातकों के सभी सन्दर्भ भदन्त कौसल्यायन महोदय के हिन्दी अनुवाद से दिये गये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इसी को उच्चारण की सुकरता के लिए प्रायः जातक कह दिया जाता है। जातकट्ठकथा में छोटे-बड़े पाँच सौ सैंतालिस जातकों का संग्रह है, जो विभिन्न परिच्छेदों में विभाजित है। शैली और स्वरूप की दृष्टि से प्रत्येक जातक के पाँच तत्त्व हैं, यथा—पच्चुप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, गाथा, अत्थवण्णना या वेय्याकरण और समोधान। अतीतवत्थु या अतीत कथा भाग में ही बुद्ध के पूर्व जन्म का वृत्तान्त आता है और इसप्रकार इसी भाग के लिए जातक नाम सार्थक है।

पालि जातक कथाओं के अतीत कथा भाग में प्रत्येक बुद्धों के अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। बौद्ध साधर्नों में अर्हत् पद के ही समकक्ष परन्तु स्वतन्त्र एक अन्य शील-सम्पन्न, आस्रव-रहित विरज, विमल चक्षु प्राप्त किये विमुक्त प्राणी का पद था, प्रत्येक-बुद्ध का और अपनी अति-विशिष्ट अवधारणा तथा लोकप्रियता की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। स्वयं जातक इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं, क्योंकि वहाँ उपलब्ध कथाओं में प्रत्येक-बुद्धों के अनेक ससम्मान उल्लेख हैं। आभिधर्मिक बौद्धों की विकसित परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष मुक्त कोटियों की अवधारणा से जुड़ा है। गौतमबुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर जब क्रमशः बुद्ध पद का विकास होने लगा और बुद्ध अधिकाधिक गुणों, विशेषणों से विभूषित किये जाने लगे, उस स्थिति में स्वाभाविक रूप से यह भी विकास हुआ कि यह पद विरल है, सर्व-सुलभ नहीं है और बुद्ध पद की प्राप्ति अनेक पूर्व जन्मों की तपस्या से ही सम्भव होती है। सामान्य मुक्तों या अर्हतों से भेंट करने के लिये ही बुद्ध के लिये सम्यक् सम्बुद्ध विशेषण की आवश्यकता पड़ी होगी। परन्तु अर्हत् और प्रत्येक-बुद्ध का परस्पर भेद किस प्रकार विकसित हुआ, यह अनुमान करना कठिन होता है। परिभाषा से प्रत्येक-बुद्ध बिना किसी की सहायता और पूर्णतः निज प्रयत्न से ज्ञान प्राप्त करते हैं, परन्तु ज्ञान का प्रकाशन किये बिना ही शरीर त्याग करते हैं।[१] जैसा नीचे स्पष्ट होगा, जातकों से यह परिभाषा इस सीमा तक अवश्य समर्थित है कि वहाँ भी कभी-कभी इस प्रकार के सन्दर्भ मिलते हैं कि प्रत्येक बुद्ध शील का प्रकाशन नहीं करते।[२] परन्तु जातकों के अनेक सन्दर्भों में स्वयं बोधिसत्त्व के प्रत्येक-बुद्धों के प्रति श्रद्धा एवं भक्तिभाव रखने, उनसे उपदेश सुनने और प्रेरणा प्राप्त कर प्रव्रज्या-ग्रहण करने के उल्लेख हैं।[३] जबकि जातकों में बोधिसत्त्व के किसी अर्हत् से उपदेश सुनने का कोई भी सन्दर्भ नहीं मिलता। वहाँ तो उनके द्वारा किसी अन्य बुद्ध से ज्ञान प्राप्त करने का भी कोई उदाहरण नहीं मिलता, यद्यपि इस प्रकार के कई संकेत हैं कि बुद्ध अनेक हैं और काश्यप बुद्ध के एकाधिक उल्लेख भी हैं।[४] महावेस्सन्तर जातक[५] में विपश्यी नामक सम्यक् सम्बुद्ध का उल्लेख है। इस स्थिति में यह

१. देखिए मलालशेखर, डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृ० ९४ और आगे, संदर्भ "पच्चेक बुद्ध", औ "पुग्गल-पञ्ञति (पी०टी०एस० संस्करण), पृ० १४।

२. महाजनक जातक, ५३९, खण्ड ६, पृ० ५। (गाथा २२)

३. देखिये जातक, ९६ खण्ड ।; १३२ खण्ड २; ४०८, ४१५, ४१८, ४५९, ४९०, ४९५, -खण्ड ४; इत्यादि ।

४. जातक, खण्ड १, संख्या ४, ४१; खण्ड २, संख्या १०४, १९०, २४३; खण्ड ४, संख्या ४३९ ४६९; खण्ड ५, संख्या ५३७; खण्ड ६; संख्या ५४७.

५. जातक, खण्ड ६, संख्या ५४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहज शंका होती है कि बौद्ध धर्म में प्रत्येक-बुद्धों की अवधारणा मुक्त पदों की किन्हीं प्राचीन स्वतन्त्र मान्यताओं पर टिकी है, और हो सकता है कि किसी-किसी उदाहरण में उसका ऐतिहासिक आधार भी हो। यह ध्यान में रखते हुए कि श्रमण-परिव्राजक परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और विकास के प्रारम्भिक चरण में यह विशिष्ट समुदाय या सम्प्रदाय के रूप में विभाजित नहीं थी, यह कल्पनीय है कि इसी परम्परा में आदर प्राप्त किन्हीं विशिष्ट व्यक्तित्वों को बौद्ध धर्म ने आत्मसात् कर लिया और इन्हें प्रत्येक-बुद्ध कोटि में स्थान दिया। अन्य किसी प्रकार से जातकों की सामग्री की समुचित व्याख्या नहीं हो पाती।

जातकों में प्रायः काम-तृष्णा से विरति अथवा सभी सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता आदि की विदर्शना-भावना से प्रत्येक-बुद्धत्व प्राप्ति के सन्दर्भ मिलते हैं। पानीय जातक[१] में स्वयं बुद्ध प्राचीनकाल में, जब बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे, पण्डितों द्वारा काम-वितर्कों का दमन कर प्रत्येक-बुद्ध होने का उल्लेख करते हैं और इसी संदर्भ में वे पाँच प्रत्येक-बुद्धों की कथा भी कहते हैं। इस कथा में काशी राष्ट्र के दो मित्रों की चर्चा में एक के पीने के लिए जल चुराने के पाप की भावना का विचार कर और दूसरे के उत्तम-रूप वाली स्त्री को देखकर चंचल मन होने का ध्यान कर प्रत्येक-बुद्ध का उल्लेख है। दोनों के ही संदर्भों में पाप-कर्म पर ध्यान को विदर्शना-भावना के रूप में प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक-बुद्ध हो जाने पर उनके रूप परिवर्तन होने, आकाश में स्थित होकर धर्मोपदेश करने और उत्तर हिमालय में नन्दमूल पर्वत पर चले जाने की चर्चा है। इसी प्रकार की काशी-ग्रामवासी एक पुत्र की कथा है जो अपने असत्य भाषण (मृषावाद) के पश्चात्ताप द्वारा प्रत्येक-बुद्ध होता है, और उसी स्थान के एक ग्राम-भोजक की जो पशु-बलि के पाप को विदर्शना-भावना से प्रत्येक-बुद्ध पद प्राप्त करता है। कुम्भकार जातक[२] में भी विषय-वासना से भरे गृहस्थ जीवन की निस्सारता और सर्वस्व त्याग द्वारा अकिंचनता की प्राप्ति आदि की विदर्शना-भावना द्वारा कई राजाओं, यथा—कलिङ्गनरेश करण्डु, गन्धार-नरेश नग्गजी विदेह— नरेश निमी और उत्तर पांचाल-नरेश दुम्मुख के प्रत्येक-बुद्धत्व लाभी होने की कथा मिलती है। सोनक जातक[३] में शालवृक्ष से एक सूखा पत्ता गिरते हुए देखकर एक व्यक्ति में शरीर की जरा-मृत्यु की भावना हुई और इस प्रकार सांसारिक जीवन की अनित्यता पर विचार कर उसने प्रत्येक-बुद्ध पद प्राप्त किया।

महामोर जातक[४] के अनुसार प्रत्येक-बुद्धत्व ज्ञान का लाभी सब चित्त-मलों का नाश कर संसार-सागर के अन्त पर खड़ा हो यह कहता है—"जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुली छोड़ देता है और वृक्ष अपने पीले-पत्तों का त्याग कर देता है, उसी प्रकार मैं लोभ-मुक्त हुआ।" कुम्भकार जातक[५] में आलंकारिक भाषा में इस अवस्था का चित्रण माता की कोख-

१. जातक ४५९, खण्ड ४. पृ० ३१४-३१६।
२. जातक ४०८, खण्ड ४, पृ० ३७-४०।
३. जातक ५२९, खण्ड ५, पृ० ३३२।
४. जातक ४९१, खण्ड ४, गाथा १५, पृ० ५४७।
५. जातक ४०८, खण्ड ४, पृ० ३७-३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपी कुटिया के नाश, तीनों भवनों में जन्म की सम्भावना का छिन्न-भिन्न होना, संसाररूपी कूड़े-कचड़े का स्थान शुद्ध कर देना, आँसुओं के समुद्र को सुखा देना, हड्डियों की चार-दीवारी को तोड़ देना, संक्षेप में जन्म-मरण के चक्र से पूर्णतया मुक्त हो जाने के रूप में किया गया है।

जातकों से प्रत्येक-बुद्धों के स्वरूप के विस्तृत और रोचक विवरण मिलते हैं। उनके काम-तृष्णा से मुक्ति की तो बार-बार चर्चा है; यथा, महाजनक जातक[1] के अनुसार प्रत्येक-बुद्ध काम-संयोजनों को काटकर, शीलादि गुणों से युक्त, अकिंचन सुख की कामना करने वाले, शील का विज्ञापन न करने और वध-बन्धन से विरत होते हैं, और दस ब्राह्मण जातक[2] उन्हें सदाचारी और मैथुनधर्म से विरत कहता है। पर इसके अतिरिक्त उनके बाह्य रूप, स्थान, जीवन-पद्धति आदि की भी चर्चा है। दस ब्राह्मण जातक[3] में ही उन्हें एक ही बार भोजन करने वाला भी कहा गया है। धजविहेठ, कुम्भकार, धम्मद्ध, पानीय आदि जातकों[4] से यह संकेत प्राप्त होता है कि ये प्रायः कुरूप होते हैं, हवा से नष्ट बादल और राहु से मुक्त चन्द्रमा की तरह होते हैं, तथा सिर-मुड़े से लेकर दो अंगुल बाल वाले तक होते हैं। दरीमुख जातक[5] में प्रत्येक-बुद्धों द्वारा आठ परिष्कार धारण करने की चर्चा है, यद्यपि ये आठ परिष्कार क्या थे यह स्पष्ट नहीं किया गया है। पानीय जातक[6] के अनुसार प्रत्येक-बुद्ध काषाय-वस्त्रधारी होते और सुरक्त दुपट्टा धारण करते, काय-बन्धन बाँधते, रक्त-वर्ण उत्तरासङ्ग चीवर एक कन्धे पर रखते, मेघ-वर्ण पासुकूल चीवर धारण करते, भ्रमर-वर्ण मिट्टी का पात्र बाँयें कन्धे पर लटकाते, आदि। महाजनक जातक[7] में भी कुछ इसी प्रकार का विवरण है; वहाँ भी इनके सिर-मुड़ाने, संघाटी धारण करने, एक काषाय वस्त्र पहनने, एक ओढ़ने और एक कन्धे पर रखने का उल्लेख है तथा मिट्टी का पात्र थैली में कन्धे पर लटकाने और हाथ में दण्ड लेने की चर्चा है। कासाव जातक[8] काषाय वस्त्र के अतिरिक्त उनके द्वारा शस्त्र धारण करने व सिर पर टोपी पहनने की भी चर्चा करता है।

बहुधा जातकों[9] में उत्तर हिमालय का नन्दमूल या गन्धमादन-पर्वत प्रत्येक-बुद्धों का निवास स्थान कहा गया है। वे प्रत्येक-बोधि ज्ञान प्राप्त कर ऊपर उठकर आकाश मार्ग से अपने स्थान पर पहुँचते हैं और वहाँ उद्यानों में और मंगलशिलाओं आदि स्थानों पर बैठते हैं। प्रत्येक-बुद्धों के स्थान के सन्दर्भ में जातकों में अनोतत्त-सरोवर की भी चर्चा है। सिरिकाल-

---

१. जातक ५३९, खण्ड ६, पृ० ६२ (गाथा ११५) और ५०-५१ (गाथा २२-२४)।

२. जातक ४९५, खण्ड ४, पृ० ५७५।

३. जातक ४९५, खण्ड ४, पृ० ५७५।

४. जातक ३९१, खण्ड ३, पृ० ४५४; ४०८, खण्ड ४, पृ० ३८; २२०, खण्ड २, पृ० ३९२; ४५९, खण्ड ४, पृ० ३१५।

५. जातक ३७८, खण्ड ३, पृ० ३९९।

६. जातक ४५९, खण्ड ४, पृ० ३१५।

७. जातक ५३९, खण्ड ६, पृ० ५९-६२।

८. जातक २२१, खण्ड २, पृ० ३९५।

९. जातक ३७८, खण्ड ३, पृ० ३९९; ४२१, खण्ड ४, पृ० १११; ४५९, खण्ड ४, पृ० ३१५; आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण्णि जातक[1] के अनुसार यह सरोवर अनेक घाटों से युक्त होता है, इसमें बुद्धों, प्रत्येक-बुद्धों आदि के अपने-अपने निश्चित घाट होते हैं। वस्तुतः बौद्धों की अनोतत्त-सरोवर की कल्पना अत्यन्त मनोरम कल्पना है और विद्वानों ने इसे सम्पूर्ण सृष्टि के प्रतीक के रूप में देखा है।[2] उपर्युक्त जातक के विवरण से भी इसका गम्भीर प्रतीकात्मक महत्त्व ध्वनित होता है, क्योंकि उसमें बुद्धों, प्रत्येक-बुद्धों के घाट के साथ-साथ भिक्षुओं, तपस्वियों, चातुर्महाराजिक आदि स्वर्ग के देवताओं के अपने-अपने घाटों की भी चर्चा है।

जातक प्रत्येक-बुद्धों के भिक्षाटन के लिए निकलने की भी चर्चा करते हैं। महामोर जातक[3] प्रातःकाल को प्रत्येक-बुद्धों के भिक्षाटन का उचित समय बताता है। खदिरंगार जातक[4] से यह ज्ञात होता है कि वे एक सप्ताह के ध्यान के बाद उठकर भिक्षाटन के लिए निकलते। खदिरंगार और कुम्भकार जातक[5] में प्रत्येक-बुद्धों के भिक्षाटन यात्रा के प्रारम्भ का सुन्दर वर्णन है। यह सोचकर कि आज अमुक स्थान पर जाना चाहिए, प्रत्येक-बुद्ध नन्दमूल-पर्वत क्षेत्र से निकल कर, अनोतत्त सरोवर पर नागलता की दातुन कर, नित्य-कर्म से निवृत्त हो, मनोशिला पर खड़े हो, काय-बन्धन बाँध, चीवर धारण कर, ऋद्धिमय मिट्टी का पात्र ले, आकाश मार्ग से भिक्षा के लिए गन्तव्य स्थान को जाते। महाजनक जातक के[6] अनुसार सप्ताह भर पानी बरसने पर भी भींगे वस्त्र में ही भिक्षाटन के लिए निकलते।

जातकों में प्रत्येक-बुद्धों के प्रति भक्तिभाव और उनकी पूजा के भी पर्याप्त सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। महाजनक जातक[7] में प्रत्येक-बुद्ध के लिए "सुरियुग्गमणेनिधि" विशेषण का प्रयोग किया गया है, जिसका यह तात्पर्य बताया गया है कि सूर्य के समान होने से प्रत्येक-बुद्ध ही सूर्य है। निश्चय ही इस उपाधि से समाज में प्रत्येक-बुद्धों के आदरास्पद होने का संकेत मिलता है। धम्मद्ध, धजविहेठ और दरीमुख जातक[8] से यह अभिव्यक्त होता कि मुण्डित शिर वाले प्रत्येक-बुद्ध को देखकर जनता सिर पर हाथ जोड़कर प्रणाम करती तथा विदा करते समय जब तक वे आँख से ओझल नहीं हो जाते, तब तक दस नखों के मेल से अन्जलि को मस्तक पर रखकर नमस्कार करती रहती। पानीय व कुम्भकार जातक[9] से ज्ञात होता है कि उपासक उनकी प्रशंसा में यह स्तुति कहते कि "भन्ते ! आपकी प्रव्रज्या और ध्यान आपके ही योग्य है।" भिक्खा परम्पर

१. जातक ३८२, खण्ड ३, पृ० ४१४।

२. इसके विषय में देखिये मलालशेखर : डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, सन्दर्भ। ("अनोतत्त") और अग्रवाल, वासुदेवशरण : भारतीय कला, पृ० ६९, ११४ और चक्रध्वज, पृ० ३६।

३. जातक ४९१, खण्ड ४, पृ० ५४६।

४ जातक ४०, खण्ड १, पृ० ३४९।

५ जातक ४०, खण्ड १, पृ० ३४९; और ४०८, खण्ड ४, पृ० ४०।

६. जातक ५३९, खण्ड ६, पृ० ६१, (गाथा १११)।

७. जातक ५३९, खण्ड ७, पृ० ४६-४७।

८. जातक २२०, खण्ड २, पृ० ३९२; ३९१, खण्ड ३, पृ० ४५४; और ३७८, खण्ड ३, पृ० ४०२।

९. जातक ४५९, खण्ड ४, पृ० ३१७-३१८; और ४०८, खण्ड ४, पृ० ४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातक[1] में प्रत्येक-बुद्ध अपने धर्म की अभिव्यक्ति इस रूप में करते हैं—"न पकाता हूँ, न पकवाता हूँ, न काटता हूँ, न कटवाता हूँ।" अतः उपासक इन्हें अकिंचन तथा सब पापों से दूर जानकर दाहिने हाथ से कमण्डलु ले, बाँयें हाँथ से पवित्र भोजन देते। बहुधा जातकों[2] में भिक्षाटन करते प्रत्येक-बुद्धों के प्रति उपासकों द्वारा किये जाने वाला आदर-सत्कार इस रूप में वर्णित है कि उपासक लोग उन्हें घर ले जाकर दक्षिणोदक देते, पाँव धोते, सुगन्धित तेल मलते, आसन प्रदान करते और तत्पश्चात् उनके लिये उत्तम खाद्य परोसते, और अन्त में दान देकर प्रार्थना कर उन्हें विदा करते। छद्दन्त जातक[3] बोधिसत्त्व छद्दन्त द्वारा पाँच सौ प्रत्येक-बुद्धों के लिये कमल के पत्तों पर मधुर फल तथा "भिस-मूल" परोसने का उल्लेख करता है।

बाहर कहीं भी, मार्ग आदि में जब उपासकों की प्रत्येक-बुद्धों से भेंट हो जाती तो वे उनके प्रति आदर-सत्कार व्यक्त करते। सङ्ख और कुम्मासपिण्ड जातक[4] से ज्ञात होता है कि ऐसे अवसरों पर उपासकों के मन में यह भाव होता कि मेरा पुण्य क्षेत्र आ गया है, आज मुझे इसमें बीज डालना चाहिये, दान का यह पुण्य-कर्म दीर्घ-काल तक मेरे हित-सुख के लिये होगा, इत्यादि। वे प्रत्येक-बुद्ध को प्रणाम करते और दान स्वीकार कर लेने की उनकी अनुज्ञा जान, वे वृक्ष की छाया में बालू का ऊँचा आसन तैयार कर उस पर अपनी चादर या कोमल टहनियाँ बिछा कर प्रत्येक-बुद्ध को बिठाते, दोने में पानी लाकर उन्हें दक्षिणोदक देते, उन्हें कुल्माष लड्डू प्रदान करते जो बिना नमक, शक्कर और तेल का बना होता, उनके लिये जूता, छाता आदि दान करते और उन्हें प्रणाम कर मिन्नत आदि करके विदा करते। स्थिति विशेष में उपासक के पास जो भी होता या जिसकी इच्छा होती, उसी को दान में अर्पित किया जाता। सुरुचि जातक[5] में एक वंसकार उपासक प्रत्येक-बुद्ध को देखकर उन्हें घर ले जाकर आदर-सत्कार करता है और उनके वर्षावास के लिए गंगा तट पर गूलर की जमीन और बाँस की दीवार की पर्ण-कुटी बना, दरवाजा लगा और चङ्क्रमण भूमि बनाकर दान करता है। वर्षावास की तीन मास की अवधि पूरी होने पर वह उन्हें चीवर ओढ़ाकर विदा करता है।

दस ब्राह्मण और आदित्त जातक[6] से ज्ञात होता है कि प्रत्येक-बुद्धों को उनके मूल निवासस्थान (उत्तर हिमालय का नन्दमूलक या गन्धमादन-पर्वत प्रदेश) से भी आमन्त्रित करके आदर-सत्कार करने की प्रथा थी। इस प्रकार के सत्कार में प्रातःकाल ही खा-पीकर, उपोसथ-व्रत रखकर, चमेली के पुष्पों की टोकरी ले, प्रासाद के आँगन या खुले स्थान पर अपने पाँच अंगों को भूमि पर प्रतिष्ठित कर, प्रत्येक-बुद्ध के गुणों का अनुस्मरण किया जाता था और उत्तर-दिशा की ओर प्रणाम कर, उसी दिशा में पुष्पों की सात-आठ मुट्ठियाँ आकाश की ओर फेंक कर इस प्रकार आग्रह किया जाता था कि "उत्तर हिमालय के नन्दमूल पर्वत पर रहने वाले

---

१. जातक ४९६, खण्ड ४, पृ० ५८१।

२. जातक ९६, खण्ड १; ३९०, खण्ड ३; ४०८, खण्ड ४; ४५९, खण्ड ४ आदि।

३. जातक ५१४, खण्ड ५, पृ० १२८।

४. जातक ४४२, खण्ड ४, पृ० २१५; और ४१५, खण्ड ४, पृ० ६७।

५. जातक ४८९, खण्ड ४, पृ० ५२३।

६. जातक ४९५, खण्ड ४, पृ० ५७५; और ४२४, खण्ड ४, पृ० १२९-१३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक-बुद्ध कल हमारा निमन्त्रण स्वीकार करें।" निमन्त्रण के लिये उत्तर-दिशा की ओर फेंके गये पुष्पों पर ही प्रत्येक-बुद्ध विचार करते थे, क्योंकि उसी दिशा में उनका निवासस्थान है, और पुष्पों का लौटकर न आना इस बात का संकेत माना जाता था कि प्रत्येक-बुद्धों ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है। ऐसा विश्वास था कि उपोसथ अंगों (दान, शील, सत्य, आदि) से युक्त होने पर जो पुष्प फेंके जाते, वे अवश्य प्रत्येक-बुद्धों पर जाकर गिरते थे। ध्यान से प्रत्येक-बुद्ध यह जान लेते थे कि अमुक व्यक्ति ने सत्कार करने के लिये हमें आमन्त्रित किया है। वे समूहों में अपने विशिष्ट आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचते थे। वहाँ सत्कार की प्रक्रिया सात दिनों तक चलती रहती, उसमें सब परिष्कारों का दान दिया जाता और प्रत्येक-बुद्ध दानानुमोदन कर अपने स्थान को पुनः लौट जाते। दानानुमोदन में वे इस प्रकार उपदेश करते कि "यह संसार जरा और मरण से जल रहा है, दान देकर इससे मुक्ति प्राप्त करो; जो दिया जाता है वही सुरक्षित होता है, इत्यादि"। वर्णित रूप में प्रत्येक-बुद्धों को निमन्त्रित करके उनका आदर-सत्कार करने की उपर्युक्त विधि अतिरंजित रूप में और अलंकारिक शब्दावली में वर्णित है, परन्तु इससे यह स्पष्ट है कि विशिष्ट निमन्त्रण देकर प्रत्येक-बुद्धों का आदर-सत्कार किया जाता था और अपने दानानुमोदन में वे उपासकों को ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देते थे।

प्रत्येक-बुद्धों के अपने विश्वस्त कुल-उपासक भी होते थे जो उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। तेलपत्त जातक[1] से यह ज्ञात होता है कि कुल विश्वस्त उपासक उनसे अपनी भविष्य सम्बन्धी बातें भी पूछते से। महाजनक जातक[2] सूचना देता है कि नित्य-भोजन ग्रहण करने वाले प्रत्येक-बुद्ध के सम्मान में उनका विश्वस्त कुल उपासक राजा प्रत्येक-बुद्ध के आवागमन की सीमा-क्षेत्र के सोलह स्थानों पर निधि गाड़ कर रखता। वे सोलह स्थान थे— राजद्वार, जहाँ प्रत्येक-बुद्ध की अगवानी की जाती और जहाँ से उन्हें विदा किया जाता, राज-भवन के बड़े दरवाजे की देहली के नीचे, देहली के बाहर, देहली के अन्दर, मंगल-हाथी पर चढ़ने के समय सोने की सीढ़ी रखने के स्थान पर, उतरने के स्थान पर, चारमहासाल अर्थात् राजशैय्या के चारों शालमय पौवे के नीचे, शैया के चारों ओर युग भर की दूरी में, मंगल-हाथी के स्थान पर, उसके दोनों दाँतों के सामने के स्थान पर, मंगल-घोड़े की पूँछ उठने के स्थान पर, मंगल-पुष्करिणी में तथा शाल वृक्ष के मण्डलाकार वृक्ष की छाया के अन्दर। छद्-दन्त जातक[3] से यह भी विदित होता है कि विश्वस्त कुल-उपासक की मृत्यु होने पर कुल के सदस्य प्रत्येक-बुद्ध के पास जाकर यह आग्रह करते कि "भन्ते! आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला दाता अमुक कारण से मृत्यु को प्राप्त हुआ है, आप उसके शव को देखने के लिए आयें"। प्रत्येक-बुद्ध उस स्थान पर पहुँचते। वहाँ उनसे शव की वन्दना करायी जाती, तत्पश्चात् शव को चिता पर रख कर जला दिया जाता, और प्रत्येक-बुद्ध रात-भर चिता के पास सूत्र-पाठ करते।

---

१. जातक ९६, खण्ड १, पृ० ५५८।

२. जातक ५३९, खण्ड ६. पृ० ४२ और ४६-४७।

३. जानक ५१४, खण्ड ५- पृ० १४१-१४२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातक कथायें प्रत्येक-बुद्धों के धातु चैत्यों और उनकी पूजा के भी सन्दर्भ प्रदान करती हैं। धातु से तात्पर्य शरीर-धातु या अस्थियों से है। अट्ठसद्द जातक[1] में इस प्रकार की चर्चा है कि नन्दमूल-पर्वत पर अपने आयु-संस्कार की समाप्ति को सन्निकट देख प्रत्येक-बुद्ध यह विचार करते हैं कि "बस्ती के राजोद्यान में परिनिर्वृत्त होने पर मनुष्य मेरी शरीर-क्रिया कर, उत्सव मना, धातु-पूजा कर स्वर्ग-गामी होंगे, और निर्वाणरूपी नगर में प्रवेश को प्रकट करने वाला यह उदान कहकर कि "मैंने निःसंदेह जन्म का अन्त देख लिया, फिर मैं, गर्भ शैया में नहीं आऊँगा, यह मेरी अन्तिम गर्भ-शैया है, मेरा संसार पुनरुत्पत्ति के लिये क्षीण हो गया", वे राजोद्यान में एक पुष्पित शालवृक्ष के नीचे परिनिर्वाण को प्राप्त होते। सुमङ्गल जातक[2] में माली के हाथ प्रत्येक-बुद्ध की आकस्मिक मृत्यु होने की स्थिति में उद्यान का स्वामी राजा उनका शरीर-कृत्य करते वर्णित है। उपर्युक्त दोनों जातकों से यह स्पष्ट होता है कि राजा परिनिर्वृत्त प्रत्येक-बुद्ध के शरीर का सप्ताह भर पूजोत्सव मना, सब सुगन्धियों से युक्त चिता पर शरीर-क्रिया करके, शरीर-धातु पर चार महापथों पर थूप या चैत्य बनवाता है और चैत्य की पूजा करते हुए प्रत्येक-बुद्ध के बताये धर्मों का पालन करने तथा धर्मानुसार राज्य करने का व्रत लेता है। राजा के द्वारा ही शरीर-क्रिया एवं चैत्य निर्माण कराये जाने का यह औचित्य है कि प्रत्येक-बुद्ध राजा के "पुण्य क्षेत्र" माने जाते थे, उनके द्वारा उपदेशित धर्म का पालन राजा का धर्म होता था, और प्रत्येक-बुद्ध राजोद्यान में ही ठहरते थे। प्रत्येक-बुद्धों के जीते जी उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा परिनिर्वृत्त होने पर उनकी धातु-पूजा करना राजा का आवश्यक धर्म था और ऐसा करके वे स्वर्ग-गामी होने की कामना करते थे। चैत्य आवागमन के सुविधाजनक स्थानों पर ही बनाये जाते थे।

पालि जातक साहित्य में प्रत्येक-बुद्धों के संदर्भ में उपरोक्त प्रकार की ही सामग्री है। ऋषिभाषित और जातक में प्रत्येक-बुद्धों की अवधारणा के स्वतंत्र अध्ययन से जो अनुमान होता है, दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से वह भली-भाँति संपुष्ट होता है। मिल-जुलकर दोनों परम्पराओं के साक्ष्य यह भली-भाँति सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक-बुद्धों की अवधारणा मूलतः न तो जैन परम्परा की है, न बौद्ध परम्परा की; बल्कि उन्हें स्वतंत्र कोटि में ही रखना चाहिये। जिस सीमा तक विशिष्ट-विशिष्ट नामधारी प्रत्येक-बुद्धों का ऐतिहासिक आधार स्वीकार किया जा सकता है, उन्हें सामान्य रूप से शील और मोक्ष मार्ग के उपदेशक मानना चाहिये, और यद्यपि उनमें विशिष्ट वैदिक ऋषियों के भी सम्मिलित होने की सम्भावना है, जैसा कि ऋषिभाषित की सामग्री से ध्वनित भी होता है, सामान्य रूप से उन्हें श्रमण परि-व्राजक परम्परा का ही अंग स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि मोक्ष मार्ग का उपदेश और शुद्ध आचार-विचार को उसका आधार बनाना, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आदि को मोक्ष मार्ग का अभिन्न अंग मानना, गृहस्थ जीवन को दोषपूर्ण मानकर प्रव्रजन का उपदेश देना, ये सब उसी परम्परा की विशेषतायें हैं। यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि वैदिक यज्ञ परम्परा की ही भाँति श्रमण परि-व्राजक परम्परा का भी दीर्घकालीन इतिहास है। प्राचीन वैदिक साहित्य में इस विषय के

१. जातक ४१८-, खण्ड ४- पृ० ९२-९३।

२. जातक ४२०, खण्ड ४- पृ० १००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ भले ही संख्या में कम हों, वे सभी महत्त्वपूर्ण हैं, और श्रमण धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।[1] अभी हाल तक यही मानने की प्रवृत्ति थी कि वैदिक यज्ञ परम्परा और पशु हिंसा के आलोचक होने के कारण इस परम्परा को अनिवार्यतः अनार्य और अवैदिक होना चाहिये। कभी-कभी आधुनिक विद्वान् इसी सूत्र से श्रमण परम्परा का सम्बन्ध सैन्धव संस्कृति से भी जोड़ते हैं।[2] परन्तु अब इसके पुष्ट साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं कि श्रमण परम्परा भी वैदिक यज्ञ परम्परा से भिन्न परन्तु प्राचीन भारोपीय और भारतेरानी आर्य संस्कृति का ही एक अंग प्रतीत होती है।[3] इस स्थिति में यह सहज कल्पनीय है कि अपने दीर्घ कालीन इतिहास में श्रमण परम्परा ने वास्तव में ऐसे अनेक ऋषियों को जन्म दिया हो जिनकी स्वतंत्र शिष्य परम्परा तो न विकसित हुई हो, परन्तु निजी उपलब्धि और उपदेशों की महत्ता की दृष्टि से जिनकी स्मृति सुरक्षित रही। बुद्ध और महावीर के युग के आस-पास जब श्रमण परम्परा ने विशिष्ट-विशिष्ट वर्ग या समुदाय का रूप ग्रहण किया, उस स्थिति में उपर्युक्त प्रकार के अनेक प्राचीन ऋषियों को प्रत्येक-बुद्ध की विशिष्ट कोटि में रख दिया गया।

ऋषिभाषित की सामग्री और सामान्य रूप से जैन आगम के साक्ष्य से यह तो स्पष्ट आभास नहीं होता कि प्रत्येक-बुद्ध रूप इन अनेक प्राचीन ऋषियों के नाम और उपदेश के उदार भाव से स्मरण करने और सुरक्षित रखने के अतिरिक्त जैन परम्परा ने उसका और कोई विशिष्ट सदुपयोग किया हो। एक प्रकार से बौद्ध धर्म में भी प्रायः यही स्थिति लगती है, और जातक कथाओं में भी स्थान-स्थान पर बोधिसत्व से जुड़े होने के साथ भी प्रत्येक-बुद्ध प्रायः उनके प्रेरक मात्र हैं। परन्तु यह रोचक है कि प्रत्येक-बुद्धों की अवधारणा बाद के बौद्ध परम्परा में सर्वथा लुप्त नहीं हुई। न केवल आभिधार्मिक ग्रन्थों में बौद्ध सन्तों की कोटि में अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध के साथ उनका प्रायः परिगणन किया गया[4], अपितु महायान द्वारा अपने बोधिसत्व आदर्श की तुलना में अर्हतों के साथ-साथ उनके आदर्श पर भी अत्यधिक स्वतंत्रता और संकीर्णता का आक्षेप किया गया।[5]

डी ५५/१० औरंगाबाद, वाराणसी-२२०१०

---

१. श्रमण परम्परा के प्राचीन इतिहास के लिये मुख्य रूप से देखिए—पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र : **स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म**, पृ० २५८ और आगे- और उन्हीं का दूसरा ग्रन्थ : **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास**, पृ० ४ और आगे।

२. देखिए पाण्डेय- गोविन्दचन्द्र : **स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म**, पृ० २१। और आगे तथा **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास**, पृ० ३।

३. देखिए- प्रो० विश्वम्भर शरण पाठक के हाल ही में प्रकाशित दो महत्वपूर्ण शोधपत्र जो श्री राम गोयल के ग्रन्थ **हिस्ट्री ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म** और सीताराम दूबे के ग्रन्थ **बौद्ध संघ के प्रारम्भिक विकास का एक अध्ययन** में पुरोवाक के रूप में प्रकाशित हैं।

४. देखिए पुग्गल-पञ्ञत्ति (पी० टी० एस० संस्करण) पृ० १४ और ७०।

५. उत्तर कालीन बौद्ध धर्म में प्रत्येक बुद्ध की स्थिति के सम्बन्ध में देखिए- नलिनाक्ष दत्त : **ऐस्पेक्ट्स ऑफ महायान बुद्धिज्म**, पृ० ८० और आगे; हरदयाल : **द बोधिसत्व डाक्ट्रीन इन बुद्धिस्ट संस्कृत लिटरेचर** पृ० ३; भिक्षु संघरक्षित : ए सर्वे ऑफ बुद्धिज्म, पृ० ७९ २२२-२२३ और २४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org